International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 760-761

वैदिक कालीन भारत में विवाहों के प्रकार की समीक्षा

अतुल कुमार सिंह
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

'विवाह–प्रथा' दीर्घतमा ऋषि ने कायम की थी, जिसमें बाद में श्वेतकेतु औद्दालिक ने सुधार किया था।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में 'विवाह–सूक्त' है जिससे वैदिक वैवाहिक रीति रिवाजों का पता चलता है। वैदिक लोगों में बाल–विवाह का प्रचलन नहीं था, विवाह की उम्र सामान्यतः 16–17 वर्ष थी। स्वैच्छिक वर–वधू चुनने का पूरा अधिकार था। अथर्ववेद में 'स्वयंवर–प्रथा' के प्रसंग भी मिलते हैं। कहीं–कहीं वधू–विक्रय के उदाहरण भी मिलते हैं, कन्या को खरीदने वाले को –विजामाता' कहा जाता था। बहु–विवाह भी होते थे, क्योंकि ऋग्वेद के दसवें मण्डल में 'सौत–डाह' प्रकरण से सौतनों के विषय में जानकारी मिलती है। अन्य उदाहरण भी हैं जिसमें 10–10 पत्नियां रखी जाती थीं। लेकिन बहु–विवाह का प्रचलन कम था। दहेज प्रथा विद्यमान थी।

प्राचीन भारतीय संस्कारों में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक चेतना का विकास होने पर विवाह निरी सामाजिक आवश्यकता ही न रहा, अपितु वह प्रत्येक व्यक्ति का एक अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य समझा जाने लगा। ब्राह्मण तथा स्मृति–साहित्य में अनवरत रूप से उसकी महत्ता को प्रदर्शित किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसे यज्ञ की संज्ञा दी गयी है। जो पुरूष विवाह कर गृहस्थ–जीवन में प्रवेश नहीं करता था उसे अयाज्ञिक कहा जाता। तीन ऋणों के सिद्धान्त के विकास के साथ तो विवाह को पवित्रता प्राप्त होने लगी क्योंकि पितृ–ऋण की मुक्ति सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही सम्भव थी और यह विवाह के माध्यम से ही सम्भव था। आश्रम–व्यवस्था के महत्व को घटाया नहीं जा सकता था।

प्राचीन हिन्दू मनीषियों के अनुसार विवाह का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति था। व्यष्टि की व्यष्टिगत संतुष्टि तो अन्तिम लक्ष्य था ही परन्तु चूँकि इसे अन्तिम स्थान प्राप्त था अतः विदित होता है कि यह जीवन का निर्देशक नहीं रहा था। यह एक सामाजिक उत्तरदायित्व था क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य धर्म का पालन करना तथा अपने वंश को अक्षुण्ण बनाये रखना था। विवाह रति अथवा पुत्र–प्राप्ति के लिए उतना आवश्यक नहीं था जितना कि अपने धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए साथी को पाना था।

विवाह के प्रकार

स्मृतियों के अनुसार विवाह के आठ प्रकार मान्य थेः

''ब्राह्मो देवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचाष्टमोऽधमः।''

अर्थात् ब्राह्मण, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच।

डॉ0 राजबली पाण्डेय के अनुसार इनमें से अनेक प्रकारों का मूल वैदिककाल में भी मिलता है, किन्तु प्राक्–सूत्र साहित्य में इनका इस रूप में उल्लेख नहीं मिलता है। मानव गृह्य सूत्र, ब्राह्म एवं आसुर प्रकारों को ही बताता है। आश्वलयन गृह्यसूत्र में ही आठों प्रकारों का उल्लेख हुआ है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि ये प्राचीन काल अथवा गृह्यसूत्रों के निर्माण–काल में प्रचलित नहीं थे। वे न्यूनाधिकरूप में कर्मकाण्ड साहित्य के क्षेत्र से परे सामाजिक समस्या थे।

उपर्युक्त आठ प्रकारों को स्मृतियों ने दो भागों में विभक्त किया है– (1) प्रशस्त और (2) अप्रशस्त। प्रशस्त के अन्तर्गत ब्राह्य, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य आते हैं जबकि अप्रशस्त में शेष चार अर्थात् आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच हैं। प्रशस्त प्रकार के विवाह प्रशंसनीय माने गये हैं। इनमें ब्राह्य सर्वोत्तम था। आसुर तथा गान्धर्व किसी प्रकार सह्य थे परन्तु अन्तिम दो, राक्षस तथा पैशाच, वर्जित थे। जो प्रकार जितना ही अधिक अप्रशस्त था, वह उतना ही अधिक प्राचीन था, यद्यपि उनमें से कुछ साथ–साथ प्रचलित थे।

1. ब्राह्म विवाह

सम्भवतः विवाह का यह विकसित रूप था। यह ब्राह्मणों के योग्य समझा जाता था। इसमें पिता अथवा संरक्षक, विद्वान तथा शील–सम्पन्न वर को स्वयं आमन्त्रित कर तथा उसका विधिवत सत्कारकर, दक्षिणा के साथ यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या का दान करता था।

''आच्छाय चार्चयित्वा च श्रुति शीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया धर्मः एष प्रकीर्तितः।''

स्मृतियों में यह सबसे अधिक सम्मानित है।

2. दैव विवाह

इसमें कन्या को अलंकृत कर अपने आरब्ध यज्ञ में पौरोहित्य करने वाले ऋत्विज को दिया जाता था।

''दैवे यज्ञतन्त्र ऋत्विजे प्रतिपादयेत्।''

कन्या दक्षिणा के रूप में दी जाती थी। चूँकि यह दान दैव यज्ञ के समय दिया जाता था, इसलिए दैव कहलाता था। यजमान इस संदर्भ में विभिन्न पुरोहितों को निमंत्रण देते थे। वे इस साहचर्य से किसी न किसी पुरोहित से प्रभावित होकर उसे अपनी कन्या को दे दिया करते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार, यह वास्तविक विवाह प्रतीत नहीं होता है तथा इसे समाज में समृद्ध तथा शक्तिशाली वर्गों में प्रचलित बहु–विवाह की प्रथा के साथ–साथ संयुक्त रखैल प्रथा समझना चाहिए। परवर्ती युगों में वैदिक धर्म के ह्रास के साथ–साथ यह प्रथा समाप्त हो गयी। अन्य गुणों पर विचार किये

बिना पुरोहित को कन्यादान देना उचित न समझा गया। वास्तव में ब्राह्म की अपेक्षा यह विवाह अप्रशस्त माना जाना चाहिए, क्योंकि इसमें कन्या–दान था जबकि ब्राह्म प्रकार में विवाह एक विशुद्ध दान था।

3. आर्ष विवाह

मनुस्मृति के अनुसार कन्या का पिता वर अथवा दामाद से यज्ञादि धर्मविहित कार्य को सम्पन्न करने के लिए एक अथवा दो गाय प्राप्त करता था।

"एक गोमिथुनं द्वेवा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्म स उच्यते।।"

यहाँ पर यह सन्देह किया जा सकता है कि यह कन्या का मूल्य था, परन्तु वास्तव में ऐसा न था, क्योंकि गो–मिथुन के देने का उद्देश्य धार्मिक था। अल्तेकर जी के अनुसार ये असुर विवाहों के उत्कृष्ट अवशेष हैं। मेगस्थनीज के विवरण से ज्ञात होता है कि भारत में विवाह के अवसर पर वर–पक्ष द्वारा कन्या–पक्ष को एक गाय और बैल उपहार में अर्पित किये जाते थे।

4. प्रजापत्य विवाह

इस विवाह के अन्तर्गत कन्या का पिता वर को कन्या प्रदान करते हुए यह आदेश देता था कि दोनों साथ–साथ मिलकर अपने कर्तव्यों का निर्वाह करें। इस प्रकार इस विवाह में पिता वर से एक प्रकार की वचनबद्धता प्राप्त कर लेता था।

"सह धर्म चरत इति प्राजापत्यः।"
"संयोगमन्त्रः प्राजापत्ये सहधर्मः चर्यतामिति।"
"सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।।"

5. आसुर विवाह

मनुस्मृति के अनुसार, जिस विवाह में पति कन्या तथा उसके सम्बन्धियों को यथाशक्ति धन प्रदान कर स्वच्छन्दतापूर्वक कन्या से विवाह करता है, उसे आसुर विवाह कहते हैं।

"ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।।"

धर्मशास्त्रों में इसकी बड़ी निन्दा की गयी है। बौधायन के अनुसार ऐसा पिता जो अपनी पुत्री का विक्रय करता है, नरक में जाता है तथा विक्रय द्वारा प्राप्त वधू वैधानिक रूप में पत्नी नहीं होती है। पद्मपुराण कहता है कि ऐसे व्यक्ति का मुख देखने योग्य नहीं है जो अपनी कन्या का विक्रय करता हो।

6. गान्धर्व विवाह

ऐसे विवाह में माता–पिता नहीं वरन् वर एवं वधू स्वयं कामुकता के वशीभूत होकर स्वेच्छापूर्वक परस्पर संयोग करते हैं। इस प्रकार के विवाह में स्त्री एवं पुरूष दोनो की सहमति होती थी। प्राचीन भारत में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं–

"इच्छायाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भव।।"

प्राचीन भारत में कुछ विचारक इसे प्रशस्त मानते थे, जबकि अन्य इसे अप्रशस्त बताते हैं। चूँकि इसकी उत्पत्ति कामुकता से होती है तथा धार्मिक क्रियाओं तथा संस्कार के बिना ही यह सम्पन्न हो जाता था, अतएव यह हीन समझा जाने लगा।

7. राक्षस विवाह

मनुस्मृति के अनुसार रोती पीटती हुई कन्या का, उसके सम्बन्धियों को मारकर या क्षत–विक्षत कर बलपूर्वक हरण करके किये गये विवाह को राक्षस प्रकार कहा जाता था।

"हत्या छित्वा च भित्वा च क्रोशन्ती रुदतीं गुहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते।"

इस प्रकार के विवाह का विकास युद्ध से होता था।

8. पैशाच विवाह

यह विवाह अत्यन्त अप्रशस्त था। जब कोई व्यक्ति एकान्त में सुप्त, मत्त अथवा प्रमत्त कन्या के साथ मैथुन करता है, तो इसे पैशाच विवाह की संज्ञा दी जाती है।

"सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाच्श्चष्टमोऽधमः।"

उपर्युक्त वर्णित विवाहों से हम कम से कम उनके स्वरूपों अथवा प्रकृतियों का आभास तो लगा ही सकते हैं। किसी भी देश की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए विवाह के महत्व को समझना आवश्यक है क्योंकि सामाजिक संगठन पर इस संस्था का व्यापक प्रभाव पड़ता है। विवाह के माध्यम से ही तत्कालीन समय में स्त्री एवं पुरूष एक साथ देवताओं की स्तुति आदि किया करते थे, गृहस्थ आश्रम भी व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण सोपान था इस प्रकार हम पाते हैं कि प्राचीन भारत में विवाह मात्र एक आवश्यकता नहीं अपितु सामाजिक एवं धार्मिक संरचना की नींव थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कपाड़िया, के0एम0 – मैरिज एण्ड फैमली इन इंडिया
2. जयवाल, के0पी0 – हिन्दू पालिटी
3. झा, डी0एन0 – एशियंट इंडिया : एन इंट्रोडक्टरी आउट लाइन
4. थापर, रोमिला – एंशियंट इंडिया सोसल हिस्ट्री (1978)
5. बासु, जोगीराज – इंडिया आफ द एज आफ द ब्राह्मनस, (1969)
6. भट्टाचार्य, एन0 एन0 – एशियंट इंडियन रिटुअलस एण्ड दियर सोसल कन्टेंट, (1975)
7. शर्मा, आर0 एस0 – एंशियंट इंडिया
8. सिंह, ओ0पी0 – प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन
9. श्रीवास्तव, के0सी0 – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड, बुक डिपो (2008–09)